**ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA**
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 43-44**

**I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)**
**e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)**
**Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026**

# बिहार में जाति एवं राजनीति : परिवर्तित प्रवृत्ति (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

**डॉ0 सत्येन्द्र सिंह**

पी0एच0–डी0 – समाजशास्त्र, ग्राम– लालमनचक, पो०– चाँड़, थाना– मखदुमपुरी (बिहार), भारत

**Received-05.01.2026, Revised-12.01.2026, Accepted-18.01.2026** **E-mail: satyendrasingh99344@gmail.com**

***सारांशः*** ***यद्यपि भारतीय संविधान द्वारा धर्मनिरपेक्ष और जाति निरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की गयी है, किन्तु भारत के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, जो जाति व्यवस्था से प्रभावित न हो। जाति व्यवस्था और राजनीति में घनिष्ठ संबंध बिहार की राजनीति की एक प्रमुख यथार्थता है।***

***कुंजीभूत शब्द– परिवर्तित प्रवृत्ति, सशक्तिकरण, निर्बल सामाजिक इकाई, व्यक्तित्व विकास, राष्ट्रीय विकास, क्रांतिकारी।***

भारतीय समाज अनेक विविधताओं से परिपूर्ण हैं। भारतीय समाज की एक अनुपम एवं बहुचर्चित विशेषता जाति व्यवस्था है। भारत में जाति प्रथा का उदय लगभग 2500 वर्षों पूर्व हुआ था। यह न केवल हिन्दूओं बल्कि सिखों, ईसाइयों तथा मुसलमानों के बीच भी पायी जाती है। जाति व्यवस्थता का सर्वाधिक कुरूप स्वरूप यह रहा कि उसने कुछ तबको को अछूत एवं जाति–विहिन घोषित कर दिया और फिर उन्हें जमीन के स्वामित्व, मन्दिरों में प्रवेश, गाँव के कुंओं–तालाबों जैसे जल स्रोतों से वंचित रखा। 19 वीं शताब्दी से इस व्यवस्था में दरारें पड़ने लगी। औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैज्ञानिक उन्नति, सरकारी सेवाओं, सेना, शिक्षा, व्यवसायों की बहुलता, आवागमन और संचार के साधनों में वृद्धि इत्यादि अनेक कारणों से जाति व्यवस्था में भी परिवर्तन परिलक्षित होते हैं।

परंतु जाति व्यवस्था कुछ प्रमुख विशेषताएं पायी जाती है। जाति की सदस्यता जन्मजात रहती है अर्थात् कोई भी व्यक्ति किसी प्रयास द्वारा अपनी जाति बदल नहीं सकता है। जाति की सदस्यता वंशानुगत होती है। जन्म से ही बच्चा अपने माता–पिता की जाति को ग्रहण कर लेता है अपनी जाति से बाहर विवाह करने पर प्रतिबन्ध होते हैं। प्रत्येक जाति का एक नाम होता है जो कि जातीय चेतना पर बल देता है। प्रत्येक जाति का परम्परागत व्यवसाय होता है। प्रत्येक जाति के मध्य उच्चता तथा निम्नता की भावना पायी जाती है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जातीय अन्याय और असमानता दूर करने की दिशा में अनेक प्रयत्न किये गये। संविधान द्वारा धर्म, जाति, लिंग, भाषा, वर्ग इत्यादी के भेदभाव से परे सभी नागरिकों को राजनीतिक अधिकार प्रदान किया गया। संविधान में कमजोर वर्गों के लिए विद्याचिकाओं, शैक्षणिक संस्थाओं और सरकारी सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान किया गया तथा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया।

महात्मा गाँधी और डॉ० अम्बेडकर दोनों का ही सरोकार जाति–व्यवस्था से था। दोनों विचारक समकालीन थे, किंतु जाति व्यवस्था के बारे में उनके परस्पर विरोधी विचार थे। गांधीजी अस्पृश्यता निवारण करना चाहते थे लेकिन वे वैदिक कालीन वर्ग व्यवस्था को अपनाने के पक्षधर थे। उनके अनुसार सभी मनुष्य समान हैं फिर अछूत गैर–बराबर कैसे? उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता का उन्मूलन तो मानवीय मूल्यांकन पर ही किया जा सकता है। वे जाति व्यवस्था के रहते हुए अस्पृश्यता को हटाना चाहते थे। डॉ० अम्बेडकर जाति के बारे में गांधीजी से सहमत नहीं थे। उनका विचार था कि भारत में धर्म के नाम पर जाति को उतना फैला दिया गया है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी ओर जाति ही प्रभावशाली है। वे ऐसे धर्म को अपनाना चाहते थे जो अछूतों को समान दर्जा ओर समान व्यवहार दे सके। वे अस्पृश्यता का निवारण जाति व्यवस्था के बाहर करना चाहते थे। उनके हिसाब से जब तक जातियाँ बनी रहती है, अस्पृश्यता बनी रहेगी। ऐसी अवस्था में जब तक सम्पूर्ण जाति व्यवस्था का उन्मूलन नहीं होता, अस्पृश्यता समाप्त नहीं हो सकती। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता का एक ही विकल्प था और वह विकल्प धर्म परिवर्तन का था। इसके लिए वे आजीवन सक्रिय रहे।

वर्तमान समय जाति व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए हैं। जन्म से निर्धारित सामाजिक हैसियत में क्षमता, योग्यता और उपलब्धि के कारण परिवर्तन आया है। अब जातियों ने अनेक परम्परागत कार्यों को छोड़ दिया है। संरचना और संस्कृति दोनों ही स्तर पर जातियों में परिवर्तन आ रहा है। वे छात्रावास बनवाती है, कॉलेज खोलती है, मन्दिर का निर्माण करवाती है और राजनीति में भागीदारी करती है। संविधान में भले ही जाति को समाप्त करने की बात कही गयाी है परन्तु ये सभी व्यवस्थाएँ केवल मानसिक स्तर तक ही सीमित रही है और केवल सामाजिक जीवन में ही नहीं बल्कि राजनैतिक जीवन में भी जाति के आधार पर भेदभाव, तनाव और संघर्ष की समस्याएँ पायी जाती है और जातीयता की गंभीर समस्या उत्पन्न हुई है। अनेक विद्वानों ने ग्रामीण समाज का जो अध्ययन किया है वे शक्ति संघर्ष में जाति के महत्व को स्पष्ट करता है। बिहार में, रामाश्रय राय1 ने 1960 के दशक में बिहार प्रदेश काँग्रेस पार्टी के लिए किए गए भर्ती कार्यक्रम में जाति और राजनीति के सम्बन्धों का विश्लेषण किया। प्रथम उन्होंने बिहार में जातीय स्तरीकरण की प्रकृति और राजनैतिक व्यवस्था में उसके प्रभाव का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि उच्च जातियाँ (ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत, कायस्थ आदि) बिहार की कुल जनसंख्या की 13.2% हैं, निम्न जातियाँ 52%, अनुसूचित जातियाँ 14.1% अनुसूचित जनजातियाँ 9.7% और मुस्लिम 11.5% हैं। इन जातियों के शैक्षिक एवं व्यावसायिक अधार का मूल्यांकन करने के बाद राय ने उन आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियों का परीक्षण किया जो सामाजिक स्तरीकरण की परम्परागत व्यवस्था के प्रति असंतोष पैदा कर रही थीं। तत्पश्चात उन्होंने काँग्रेस पार्टी में भर्ती पर सामाजिक स्तरीकरण के प्रभाव को खोजा। उन्होंने पाया कि राजनैतिक जागृति के प्रारम्भिक समय में बिहार के राजनैतिक परदृश्य में एक दो ही उच्च जातियों का वर्चस्थ था (कायस्थ और भूमिहार) इन परम्परागत सुविधा प्राप्त जातियों ने अपने सामाजिक विकास के लिए नवीन अवसरों का पूर्णरूपेण उपयोग किया जिससे असमानताएँ पैदा हुई। शीघ्र ही अधिक संख्या तथा आर्थिक रूप से संस्थापित जातियों की प्रगति करने की आकांक्षओं के कारण, विशेष रूप से भूमिहारों की आकांक्षाओं के कारण, कायस्थों को आभास हो गया कि उनकी सत्ता छीनी जा सकती है। अपनी सुविधा प्राप्त स्थिति की सुरक्षा हेतु कायस्थों को भी अनेक जातियों में से एक न एक के कन्धे पर जुआ रखना पड़ा। गठबंधन समूह और फिर उनके विरोध स्वरूप दूसरे गठबंधन समूह बनते रहे, जातियाँ प्रतिस्पर्द्धा में व्यस्त रहीं और दूसरे स्तर के नेतृत्व के उदय के साथ–साथ राजनैतिक क्षेत्र में अनेक जातियों की प्रवेश हो गया। इस प्रकार जबकि बिहार प्रदेश कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में 1934 में 77% तथा 1947 में 78% उच्च जातियों के सदस्य थे, 1960 में यह 61% ही रह गए। इसी प्रकार जबकि 1934 और 1947 में निम्न जातियों के सदस्य बिल्कुल नहीं थे, 1960 में 14% हो गए, जबकि 1947 में अनुसूचित जाति शुन्य तथा अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की संख्या 7% थी, यही संख्या 1960 में क्रमशः 5% और शून्य हो गई।

**अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026

मुसलमानों का प्रतिनिधित्व 1947 की तरह 1960 में भी 14% ही बना रहा। यह दर्शाता है कि असमानताएँ कम होनी प्रारम्भ हो गई और राजनैतिक दलों का जाति समर्थन के आधार पर कार्य करना प्रारम्भ हो गया। इन प्रवृत्तियों को (जैसे असमानता का कम होना, उच्च जातियों के एकाधिपत्य की समाप्ति आदि) जो संस्तरण में परिवर्तन दर्शाते हैं, का विवेचन करने के पश्चात, राय ने उन विधियों का वर्णन किया, जिनसे राजनैतिक प्रक्रियाओं ने अपने आप ही स्तरीकरण व्यवस्था में सुधार कर दिया। राय ने कहा कि "बिहार में काँग्रेस पार्टी में भर्ती के स्वरूप को जाति ने अत्याधिक प्रभावति किया है।" इससे पता चलता है कि जाति समर्थन प्राप्त करके राजनैतिक दल किस प्रकार कार्य करते हैं।

वर्तमान समय में बिहार की राजनीति में जो स्थिति पायी जाती है उससे स्पष्ट होता है कि सभी राजनैतिक दलों ने जाति की भावना को और जातियता को महत्व प्रदान किया है। कोई भी राजनैतिक दल किसी क्षेत्र में अपने सबसे अधिक योग्य सदस्य को उम्मीदवार नहीं बनाता, बल्कि पार्टी टिकट दानों के पहले यह देखा जाता है कि किस निर्वाचन क्षेत्र में किस जाति के मतदाता अधिक है ओर भिन्न–भिन्न जातियों के मतदाताओं की संख्या क्या है? मतदान के पहले प्रचार में स्पष्ट रूप से जाति की बात न की जाती हो परन्तु प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में जातीय नेता से सम्पर्क स्थापित किया जाता है। उसे पैसा देकर या कोई और लोभ दिलाकर उसका समर्थन और इस प्रकार उस जाति का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश होती है। घर–घर प्रचार में जाति के नाम पर वोट देने की अपील की जाती है और मतदाता भी मतदान के समय Caste Factor को ध्यान में रखते हैं। राजनैतिक दलों में पार्टी लीडर का वो महत्व नहीं होता जो Caste Leader का महत्व होता है। बिहार में भिन्न–भिन्न जाति के लोग Party Leader से अधिक Caste Leader के Royal होते हैं। केवल यही नहीं पार्टी के द्वारा टिकट देने में, मंत्रीमंडल का संगठन करने में, मंत्रालय के विभाजन में, दूसरे पदों की नियुक्ति में सबसे अधिक महत्वपूर्ण जाति होती है। किसी राज्य में जिस जाति का मुख्यमंत्री होता है, तो उस जाति के लोगों को विशेष राजनीतिक प्रमुख प्राप्त हो जाता है और उस जाति के लोगों को विशेष सुविधाएं उपलब्ध हो जाती है और इस प्रकार चुनाव से लेकर पदों के बँटवारों तक जाति और जातियता का महत्व पाया जाता है और ये सत्य है कि बिहार में Democracy के नाम पर Castocracy पायी जाती है।

बिहार में पंचायती राज के जो चुनाव या जो समान चुनाव और उप–चुनाव होते हैं उनमें ग्रामीण क्षेत्र के लोगों में जातीयता की भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है और जाति के आधार पर ही उनके बीच टकराव और संघर्ष होता है। अनेक व्यक्तियों की हत्या होती है और राजनैतिक अधिकार के लिए जाति के आधार पर गुटबन्दी और भेदभाव उत्पन्न होती है जो राजनैतिक क्षेत्र में जाति के महत्व को स्पष्ट करती है।

आरक्षण की राजनीति ने बिहार में अगड़ा–पिछड़ा राजनीतिकरण को बढ़ावा दिया। 1977 के विधानसभा चुनाव के बाद बिहार विधानसभा में पिछड़ी जातियों के विधायकों की संख्या बढ़ी। इस समय पिछड़ी जाति के नेता कर्पूरी ठाकुर राज्य के मुख्यमंत्री थे। इससे राज्य में पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का मसला खुलकर सामने आ गया। 1978 में ही बिहार में कर्पूरी ठाकुर1 की सरकार ने अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण लागू कर दिया। राज्य में ऊँची जाति के लोगों ने इसका खुलकर विरोध किया। इससे आरक्षण मसले पर पिछड़ों में एकजुटता बढ़ी।

1980 में जब मंडल आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, उस समय केन्द्र में इंदिरा गांधी के नेतृत्व में काँग्रेस सरकार सत्तारूढ़ हो चुकी थी। काँग्रेस मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू कर ऊँची जातियों को नाराज नहीं करना चाहती थी। काँग्रेस सरकार विचार–विमर्श का दिखावा करते हुए टाल–मटोल की नीति अपनाती रही। आखिरकार उसने मंडल आयोग की सिफारिशों को ठंडे बस्ते में डाल दिया।[2]

1989 के लोकसभा चुनाव से पहले जारी अपने घोषणा पत्र में जनता दल ने मंडल आयोग की सिफारिश को लागू करने का वायदा किया था। वी०पी० सिंह की सरकार ने 1990 में मंडल आयोग के सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। उस समय बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद थे। आरक्षण के खिलाफ ऊँची जातियों के तीखे विरोध का अंदाजा उसी से लगाया जा सकता है कि बाढ़ में वी०पी० सिंह की सभा में जूते–चप्पल फेंके गये, तो आरा में लालू की सभा में उपद्रव हुआ।[3] किसी भी राजनीतिक दल ने खुलकर आरक्षण विरोधी आंदोलन में हिस्सेदारी नहीं ली। फिर भी यह एक जमीनी सच्चाई है कि आरक्षण विरोधी आंदोलन का नेतृत्व दूसरे दर्जे के ऊँची जाति के कांग्रेसी और भाजपाई नेता कर रहे थे। दूसरी ओर लालू और उनके साथी आक्रामक रूप से पिछड़ी जातियों को आरक्षण दिए जाने को मुहिम के अगुआ बने हुए थे। उन्हीं के प्रयासों से पिछड़े गोलबन्द हुए। लालू ने पिछड़ों में सत्ताधिकार और आरक्षण की भूख पैदा कर रही।

इस प्रकार बिहार की राजनीति में जाति का महत्व विशेष रूप से बढ़ गया है और राजनैतिक क्षेत्र में बहुत से कार्य और राजनैतिक नेताओं के बीच संबंध जाति और जातिगत की भावनाओं से निर्धारित हो रहे हैं। बिहार में मुख्यमंत्री श्री नीतिश कुमार पिछड़ी जाति के ही हैं। इस प्रकार वर्तमान बिहार में जातियों का राजनीतिकरण हुआ है और इसके लिए विभन्नि जाति के नेता ही उत्तरदायी है। हालांकि, जाति और राजनीति का संबंध स्थिर न होकर समय के साथ बदलता रहा है। जाति के अतिरिक्त एक दूसरे कारक भी हैं, जो राजनीतिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।5 कई बार आर्थिक आधार, किसी एक जन–नेता का प्रभाव या किसी उम्मीदवार या दल के लिए सहानुभूति, रोजगार का वायदा, महिलाओं के उत्थान के लिए आर्थिक सहायता देना, 125 यूनिट बिजली निःशुल्क आदि का प्रभाव राजनीति पर पड़ता है। बिहार में राजनीति को अब नवीन समाज की स्थापना के रूप में देखा जाता है। राजनीति में भाग लेने वालों की दृष्टि में परिवर्तन हुआ है। फिर भी बिहार की राजनीति को समझने के लिए जाति एक प्रासंगिक आधार है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राम आहूजा (1995) : ''भारतीय सामाजिक व्यवस्था'', रावत पब्लिकेशन्स जयपुर एवं नई दिल्ली, पृ० 304–305.
2. अशोक कुमार सिन्ह (2006) : ''जननायक कर्पूरी ठाकुर'', विशाल पब्लिकेशन पटना, नई दिल्ली, पृ० 89.
3. राजीव धवन, (1997) : ''द सुप्रीम कोर्ट एज प्रॉब्लम सोल्वर : द मंडल कंट्रोवर्सी'' संकलित, वी० ए० पाई०।

*****